ज्ञान सिंह मान के साहित्य में वर्गभेद

सुमन रानी
सुपुत्री श्री श्रवन सिंह
गांव जमाल,तहसील नाथूसरी चौपटा
जिला सिरसा।

भारत में निर्धनता की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। जिस कारण देष के विकास में रूकावट पैदा हो रही है। निर्धनता कोई ईष्वर की देन नहीं है बल्कि यह धन के अभाव में उत्पन्न होती है जो कि सामाजिक समस्या भी है। ''निर्धनता का तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज को सामाजिक–आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों की अनिवार्य आवष्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है।''[1]

समाजशास्त्र के अनुसार जिस व्यक्ति के पास भोजन, कपड़ा और मकान अर्थात जीवन की प्रारंभिक आवष्यकताएं न हों या जीवन की आवष्यकताएं, सुविधाएं और मनोरंजन के साधन नहीं हैं उस व्यक्ति को हम निर्धन कह सकते हैं।

इन चीजों का अभाव धन की कमी से होता है। धन सुविधाएं पाने का सबसे बड़ा साधन है। जिन सुविधाआं का अमीर आदमी उपभोग करता है। ''निर्धन व्यक्ति तो आज भी इन सुविधाओं के नाम भी नहीं जानता।''[2]

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने साहित्य में निर्धनता का वर्णन किया है। 'खुलते बंद सीप' उपन्यास में राजेष की निर्धनता का चित्रण किया गया है कि प्रकार एक साधारण और निर्धन परिवार से आकर राजेष अपनी पढ़ाई पूरी कर रहा है, वह अपनी गरीबी को किसी पर भी प्रकट नहीं करता–

'' राजेष के संबंध में इतना ही ज्ञात हो पाया कि वह रोहतक का रहने वाला था। एक छोटी बहन और बूढ़ी मां के अतिरिक्त किसी तीसरे निकट संबंधी का पता नहीं चल सकता है। सत्यपाल ने बताया राजेष की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। उसे अपने लघु किंतु विपन्न परिवार की चिंता प्रायः रहती ही थी।

–दा, आप तो कह रहे थे राजेष देहली विष्वविद्यालय से एम.कॉम. कर चुका था–

–हां,

–और इस पढ़ाई के लिए अर्थ इत्यादि की व्यवस्था? जितेन निःष्वास भर निचे बिछी घास की ओर देखने लगता है, कुछ सोच नयनों में भी उभरने लगी। वह कहता है–

[1] डॉ. गोपाल कृश्ण अग्रवाल, सामाजिक विघटन, पृ0 287.288
[2] डॉ. सरिता वषिश्ठ, युगबोध और हिंदी नाटक, पृ0 225

ऐसे ही प्रष्न मैंने सत्यपाल से किए थे। कहने लगा– राजेष आर्थिक दृश्टि से अधिक सुखी नहीं था, परंतु कभी उसने अनुभव नहीं होने यिा कि उसे दैनिक आवष्यकताओं की पूर्ति की चिंता है। वह सुखी और संपन्न सा दिखता था, हां कभी–कभी अनायास उद्भ्रांत सा हो आता था, अपने–आप से ऊब जाता और फिर कई–कई दिन किसी से बात नहीं करता था। रोहतक में उस के पुर्खों की थोड़ी सी भूमि है, उसी की देख–रेख से मां और छोटी बहन का खर्च चलता था, और स्वयं वह–

जितेन कहते–कहते रूक जाता है, दलीप तिरछी आंखों से जितेन के मस्तक पर गिर रही सुनहरी लटों की ओर देखता है–

–वह प्राइवेट संस्थाओं में काम करके अपना निर्वाह जुटा लेता था।''[3]

उपन्यास 'मृगतृश्णा' में यह दर्षाया गया है कि किस प्रकार निर्धनता व्यक्ति को तोड़ देती है और निर्धन व्यक्ति को कुछ भी करने पर मजबूर कर देती है–

ठीक उसी समय उसे बाहर बरामदे में षोर गुल सुनाई दिया। कोई गला फाड़–फाड़ कर चिल्ला रहा था।

'हां–हां, मैंने छुरा मारकर उसका खून कर दिया। मेरे बच्चे भूखों मर रहे थे। उस हरामजादे की दुकान पर दो महीने काम किया। भीख नहीं मांग रहा था। साले से साफ इन्कार कर दिया। मेरी मजदूरी। मेरे पसीने की कमाई वह दलाल का बच्चा हड़प कर जाना चाहता था....'

'तो तुमने खून किया है.....लगा दो मुझे फांसी....।''[4]

डॉ. मान द्वारा रचित उपन्यास 'दीमक और दायरे' उपन्यास में इसी विद्रुपता का चित्रण किया गया है–

''कुछ क्षणों तक वह बाल सिंह और माधवी के दु:खी जीवन के बारे में सोचता रहा। सहसा द्वारपर आवाज हुई, उसने घूम कर देखा। भूमि की ओर मस्तक झुकाए माधवी उसके समीप थी। इस समय हरपाल से आंख मिलाकर बात करने का साहस उसमें नहीं रहा था। बेचारी अपनी निर्धनता के बोझ से दबी जा रही थी। एक तो रूप का भार–और दूसरे आत्म–गौरव की रक्षा का प्रष्न–हरपाल ने उसके स्निग्ध पलकों को तरल कपोल प्रदेष से अनुमान लगा लिया कि वह आंसू बहाकर आ रही है। उसकी गति में पहले सा विष्वास और स्थिरता नहीं थी, परंतु ऐसे दिन तो माध्वी के जीवन का अंग बन चुके थे। अपने अतिथि के सामने तो वह अपनी निर्धनता का नाटक नही खेल सकती थी। परिस्थिति को संभालने के प्रयास में उसने कह ही दिया, '' ओह, मैं तो भूल ही गई। आपके लिए अभी दूध गर्म करना है।''[5]

[3] डॉ. ज्ञान सिंह मान, खुलते बंद सीप, पृ0 80
[4] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मृग तृश्णा, पृ0 128
[5] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ0 44

प्रस्तुत उपन्यास में माधवी कंवर साहब से कहती है कि वह उनकी निर्धनता का उपहास न उड़ाए–

उसे ऐसा लगा कि लंपट व्यक्ति ने उसके वक्ष पर पड़ा महीन वस्त्र चिथड़े–चिथड़ेत्र करके उड़ा दिया है। अपनी लुटती लाज को बचाने के लिए जैसे कोई अबला चीत्कार कर उठती है, वैसे ही मर्म–भेदी स्वर में माधवी चीख उठी, '' भगवान के लिए हमारी निर्धनता का इस प्रकार उपहास मत उड़ाइए– घर आया अतिथि तो परमेष्वर होता है। अतिथि के लिए तो हम अपने प्राण तक न्योछावर कर देते हैं फिर आप, '' माधवी का स्वर अस्थिर हो गया उसका षरीर षुश्क पत्ते की भांति कांप सा गया। भाव विहल होकर वह हरपाल के पैरों में गिर पड़ी, भर्राए कंठ से बोली, ''कुंवर साहब, आप बड़े आदमी हैं। ये नोट आपके लिए चंद सिक्कों सा महत्व रखते हैं। परंतु हम गरीबों के पास अहं और आत्म–सम्मान ही तो है जो हमारी पूंजी कहलाते हैं, आप इन्हें भी लूट लेना चाहते हैं, परंतु क्यों?''[6]

डॉ. मान ने अपने उपन्यास 'सिमटता सागर' में इंदिरा गांधी द्वारा दिए गए नारे 'गरीबी हटाओ' की सार्थकता का चित्रण मि. मुंझाल के माध्यम से किया है–

''मुंझाल साहब, कुछ भी हो, आपकी अपरोच निगेटिव है।''

''तो इंदिरा जी की 'गरीबी हटाओ' क्या है? गांधी जी का अहिंसावाद क्या है? 'निगेटिव' और पॉजीटिव' क्या दृश्टिकोण का ही भेद नहीं है? जो सम है क्या दूसरे पहलू से विशम नहीं हो जाता......।''

''लेकिन गरीबी हटाओ के पीछे उदात भावना है।''

''वाह रे पीर!''

मुंझाल साहब उधार खाए बैठे थे।''[7]

'अजय बाबू, आपके होते, हम गरीबों की मजूरी मारी जाए। यह तो पाप होगा। इधर मैंने दो महीने सेठ जी के घर बर्तन धोए, खाना बनाया। आज मुझे एक महीने की बेगार देकर उन्होंने निकाल दिया, माई–बाप, आप तो अखबार छापे हो। यह कौन सा इंसाफ हुआ–?'

अजय ने उसको ध्यानपूर्वक देखते हुए पूछा,

'तुम किस सेठ जी की बात करते हो?'

'वाह अजय बाबू आप भी कमाल करते हो। मुझे नहीं पहचाना, मैं हूं रामजस, वो सेठ रेखा के पिता, उनकी बात करता हूं। भैया इन हाथों ने तो आप को खाना खिलाया है–'

कुछ ही क्षणों में अजय को सारी स्थिति का ज्ञान हो गया। रामजस को उसने अपने एक मिमत्र की चिट्ठी भी लेकर दी थी। परंतु सेठ कांता प्रसाद तो बहुत बड़े आदमी हैं। इस बेचारे के साथ इस तरह का व्यवहार–' अजय ने कुछ सोचकर कहा,

[6] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ0 45
[7] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सिमटता सागर, पृ0 93

'परंतु उन्होंने तुम्हें नौकरी से अलग करते हुए कुछ कहा तो होगा?'

'नहीं भैया, का कहना। सुसरा उनका मैनेजर कोई अपना आदमी रखने को बोले–'

'ओ, अब समझा–' अजय ने कुर्सी पर पीठ टेककर कहा,

'परंतु उन्होंने तुम्हारी तनख्वाह क्यों नहीं दी–'

रामजस कुछ गिड़गिड़ाकर बोला,

'उनकी मर्जी ठहरी। हम गरीबन की कौन सुने। कहते थे तुमने जो बर्तन तोड़े उनके पैसे तुम्हारी तनख्वाह से पूरे हो गए हैं–''[8]

गरीबों के निर्धनता केवल आश्रय ही नहीं बल्कि एक विवषता भी है जो मानव को हैवान बना देती है। इसी कारण वह नैतिक, सामाजिक आदि मूल्यों को ताक पर रख अपना तथा अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए धन कमाना चाहता है। यह कमाई पाप की कमाई कहलाती है।

अतः निर्धनता उस दुःस्वप्न की तरह जो हमें दिन–रात चैन नहीं लेने देता। वह निर्धनता की बीमारी दूर करने के लिए या तो आत्महत्या कर लेता है या आर्थिक मूल्यों को ताक पर रखकर बुरे कार्य करने लग जाता है। आज मेहनत के बल पर ही इस बुराई को दूर किया जा सकता है। निर्धनता को दूर करने के लिए सरकार को रोजगार के अधिक से अधिक अवसर देने चाहिए व धनी वर्ग को भी चाहिए कि वह गरीब व असहाय परिवारों की आर्थिक मदद करे ताकि इस निर्धनता नामक बीमारी को दूर हो सके।

किसी मनुष्य द्वारा दूसरे मनुश्य से उधार लिए गए पैसे लेता है और उसके बदले ब्याज भी देता है तो उसे ऋणग्रस्तता कहा जाता है। ज्यादातर ब्याज महाजनों द्वारा लिया जाता है। कभी–कभार ऋण लेने वाले व्यक्ति को अपनी कोई वस्तु गिरवी रखनी पड़ती है।

ऋणग्रस्तता का चित्रण डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने उपन्यासों में किया है। 'दीमक और दायरे' उपन्यास में बाल सिंह अपनी गरीबी के कारण कुंवर साहब से सूद पर पैसे लेने जाता है–

''हां सरकार, उसकी मां को बचाने के लिए मैंने साहूकार से तीन हजार रूपये कर्ज लिए थे। षहर का बड़ा डॉक्टर कहता था कि पेट में गोला है, बड़ा ऑपरेषन करना होगा, हम गरीब लोग इतना बोझ कैसे उठा सकते हैं–''

कहते–कहते बाल सिंह का चेहरा विशण्ण हो गया। वाणी तरल हो आई, उसने सांस लेकर कहा, '' उसे बचाने के लिए मैंने तीन हजार दांव पर लगा दिए–हार गया–मैं हार गया, कुंवर साहब–'' वृत्रृ बाल सिंह भावुक हो उठा। वर्शों से विस्मृत विशाद पत्नी का स्मरण पर उस के षरीर में सिहरन उत्पन्न कर गया–''वह मर गई और मैं कर्ज के बोझ में दब गया। सूद की रकम तक देने को मेरे पास पैसा

---

[8] डॉ. ज्ञान सिंह मान, मृग तृश्णा, पृ0 129

नहीं रहा। हमारी नई सरकार बनते ही रियासत की नौकरी भी जाती रही। अब तो, अब तो, ''बाल सिंह कह न सका, अपने मन को वह इतनी सुगमता से तो व्यक्त नहीं कर सकता था। दीर्घ ष्वास लेकर उसने फिर से अपना काम आरंभ कर दिया। हरपाल ने कुछ सोच कर धीमे स्वर में कहा, ''कितना रूपया होगा? मेरा मतलब सूद आदि की रकम मिला कर कितना तुम्हारे सिर पर है–''

''कुवंर साहब–'', उस भोले ग्रामीण ने आह भर कर कहा,

'' जब मैं उसे चुका ही नहीं सकता तो फिर गिनती क्यों करूं– हां साहूकार तकाजे के समय कह देता है– पांच हजार हो गए हैं, पांच हजार–।''[9]

सूदखोर अनपढ़ व भोले–भाले लोगों से तीन का छह रूपया वसूल करते हैं।

कई बार तो सूदखोरों की नजर उनकी बहू–बेटियों पर भी होती है, वे उनकी इज्जत का सौदा करना चाहते हैं। इसका एक उदाहरण 'दीमक और दायरे' उपन्यास में माधवी कुवंर साहब को बताती है–

''कुवंर साहब, धनी लोगों के पास क्या आत्मीयता नाम का कोई भाव नहीं होता? क्यों उनकी दृष्टि बाह्य रूप तक ही सीमित रहती है। अभी–अभी एक साहुकार आया था, वह अपे धन के बल पर मेरे षरीर और बाबा की इज्जत का सौदा करना चाहता था– और आप।'' माधवी के लिए कहिना कठिन हो गया। उसकी सांस फूल रही थी, वह लंबी हिचकी भर कर बोली,

''आप मेरी आत्मा को खरीदना चाहते हैं, क्यों?''

और माधवी ने अपना मस्तक चारपाई पर पटक दिया। वह अपने व्यवहार पर लज्जा का अनुभव करने लगा परंतु माधवी के इस प्रकार आंसुओं को भी तो वह नहीं देख सकता था। उसने साहब बटोर कर अपना अस्थिर सा हाथ माधवी के मस्तक पर रख दिया। एक आत्मीय स्पर्ष! कुछ सोचता हुआ बोला।''[10]

कई बार लोग अपने पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनी जमीन तक गिरवी रख देते हैं। 'सूख रेत के घरोंदे' उपन्यास में अभी अपनी जमीन गिरवी र खकर अपनी पढ़ाई जारी रख पाता है–

'' इतना ही जानता हूं– सामान्य परिवार से था– जमीन गिरवी रखकर पढ़ाई जारी कर पाया था– विदेष गमन के लिए राश्ट्रीय टीम का चयन होना था– नाम सबसे ऊपर था– किसी 'मनिस्टर' के संबंधी के लिए उसे 'ड्रॉप' कर दिया गया। हताष था– गिरवी जमीन छुड़ाने के प्रयास करता रहा– जिनके पास जमीन बंधक थी, राजनीति में अधिक मजबूत हो गए– गांव में एक हत्या हो गई। दोश डी. डी. के भाई पर लगा। अपनी षक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप स्थिति को संभालने का प्रयास करता रहा–

[9] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ0 50.51
[10] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ0 46

सरकार बदली, आतंक का दौर बढ़ने लगा– युवाओं को चुन–चुनकर झूठे 'एनकाउंटर' के नाम पर मृत्यु के घाट उतारा जाने लगा– इसी प्रवाह में डी.डी. के भाई और बहन को भी।''[11]

जब आदमी का काम अच्छा नहीं चल रहा होता तो ऋण मांगने वाले भी बहुत परेषान करते हैं। 'दीमक और दायरे' उपन्यासमें हरपाल की फैक्ट्री में आग लगने से उसका सब कुछ सवाह हो जाता है और उसके पास कुछ नहीं बचता तब लेनदार भी उसे तंग करने लग जाते हैं–

''हरपाल की फैक्ट्री पूरी तरह जल चुकी थी। समय पर सहायता मिलने पर भी वह लकड़ी और बांस से भरे गोदामों की रक्षा न कर सका। उसके सब खिलौने आग की आह में तड़प कर रह गए। गरम राख के समीप अपने उजड़े परिश्रम को देखकर हरपाल की आंखें तरल हो आई। उसने किस भव्य आषा से प्रेरित होकर उस भूमि के टुकड़े पर अपने स्वप्नों का भवन खड़ा किया था। किस उत्साह से उसने अपनी मां के गर्व को चूर करने की भीश्म प्रतिज्ञा की थी। परंतु विधि के एक ही ष्वास ने उसके स्वर्ण अक्षरों को प्रछन्न बना दिया। फैक्ट्री के नश्ट होते ही ऋण लेने वालें ने घर के द्वार पीटने आरंभ कर दिए। फैक्ट्री को आग कैसे लगी, इसका पता तो पुलिस के कर्मचारी भी न लगा सके। अपने परिश्रम का भाग्य द्वारा ऐसा तिरस्कार देखकर उसका दिल टूट गया। ऐसे ही संकट काल की आषंका में उसने फैक्ट्री का बीमा करवा रखा था। बीमा कंपनी से कुल मिलाकर जो उसे प्राप्त हुआ उससे वह तकाजा करने वालों के मुंह बंद नहीं कर सकता था। परिणामस्वरूप उसे परिस्थिति के आगे षस्त्र डालने पड़े। अपनी पूरी षक्ति और पहुंच जुटाकर भी वह तीन लाख का ऋण नहीं उतार सकता था।''[12] लेखक ने ऋणग्रस्त मनुश्य को अंदर ही अंदर घुटकर मरने की स्थिति का वर्णन किया है। सरकार कड़े नियम बनाकर साहूकारों व सूदखोरों पर रोक लगानी चाहिए व असानी से ऋण उपलब्ध करवाया जाना चाहिए ताकि किसी को आत्महत्या करने के लिए मजबूर न होना पड़े।

निष्कर्ष:

डॉ. ज्ञान सिंह मान ने अपने साहित्य में निर्धनता का वर्णन किया है। मानव के ऐतिहासिक विस्थापन का आरंभ दस लाख वर्ष पूर्व से हुआ और उपनिवेशवाद और औद्योगीकरण से इस प्रवृत्ति में अधिक वृद्धि आयी। साम्राज्य की विपुलता के लिए शुरू हुए विस्थापन ने कालांकार में स्वेच्छापूर्वक, प्रेरित और विवशित आर्थिक तंगी को जन्म दे दिया। राजनीतिक कारणों से बीसवीं शताब्दी में तंगी बढ़ गई, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनियाभर में विस्थापन के नये अध्याय जोड़े गए। राष्ट्रों के विभाजन ने मानव जाति के भारी विस्थापन को जन्म दे दिया। आर्थिक विषमताएं दुनिया भर के लोगों से सुरक्षा के एहसास को छीन ले गयी।

[11] डॉ. ज्ञान सिंह मान, सूखी रेत के घरौंदे, पृ0 127
[12] डॉ. ज्ञान सिंह मान, दीमक और दायरे, पृ0 90.91